ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. No.- 229-232
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

धार्मिक व्यवहार में अनुसंधानों का महत्व (एक समाजशास्त्रीय अध्ययन)

सुनील कुमार यादव
ग्राम– कुम्भी, पो० – तिलैया–गया (बिहार) भारत

Received-10.12.2022, Revised-16.12.2022, Accepted-20.12.2022 E-mail: akbar786ali888@gmail.com

सारांशः ***ग्रामीण समाज के अध्ययन में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके कई कारण हैं। सबसे पहला तो यही कि नगरवासियों की तुलना में ग्रामवासियों का धर्म के प्रति रुझान अधिक पाया जाता है और यह इसलिए कि ग्रामीण जीवन प्रधानतः कृषि पर आधारित है। खेती अभी भी ऐसा धन्धा है, जो मानव प्रयास के अतिरिक्त बहुत कुछ प्रकृति की कृपा पर निर्भर है। अच्छी खासी खड़ी फसल ओलों की मार से बिल्कुल नष्ट हो सकती है या किसी–किसी साल सूखा पड़ जाने पर खड़ी खड़ी–सूख जाती है। ऐसे वातावरण में अलौकिक शक्तियों के प्रति आदमी का प्रबल विश्वास हो जाना स्वाभाविक ही है। गाँव में धर्म के फूहड़ और कठोर रूप, जैसे भूत प्रेत, जीववाद, जादू–टोना, अनेक देवी–देवताओं का प्राचुर्य मिलता है।***

कुंजीभूत शब्द– ग्रामीण समाज, नगरवासियों, ग्रामवासियों, ग्रामीण जीवन, वातावरण, अलौकिक शक्तियों, स्थापत्य, निर्वाह।

गाँव में धर्म कोई निजी या व्यक्तिगत चीज नहीं, बल्कि एक प्रबल सामाजिक शक्ति है जो गाँव वालों के समस्त कार्यकलापों को प्रभावित करती है। उनके बौद्धिक, भावात्मक और व्यावहारिक जीवन में व्याप्त रहती है। परिवार के सामाजिक संगठन पर उसकी छॉप देखी जा सकती है। स्वयं हमारी जाति प्रथा जो गाँव की सामाजिक संरचना है, धर्म पर ही निर्भर है। केवल यही नहीं, गाँव की लोक कला, चित्रकारी, स्थापत्य, गीत, त्यौहार सभी पर धर्म की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। गुजारें की निर्वाही अर्थव्यवस्था में गाँव का नेतृत्व प्रायः पुरोहित वर्ग के हाथ में रहता था, पुरोहित वर्ग का सारा जीवन व कार्य–कलाप धर्म से ओतप्रोत था । धर्म ही उनके जीवन का प्रमुख चालक और लक्ष्य था।

आधुनिक युग में गाँवों पर पुरोहित वर्ग का आधिपत्य बहुत कुछ समाप्त हो गया है। पर फिर भी धर्म ने हमारे यहाँ जिस सामाजिक संरचना का सूत्रपात और समर्थन किया, वह अभी भी प्रबल है और ऊँच–नीच, छूआछूत जैसी प्रथाओं का समर्थन लोग धर्म से ही करते हैं।

नये राजनैतिक विधान, लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष विचारधारा के प्रसार और आघात के कारण गाँव में धार्मिक संस्थाओं का महत्व कुछ घट रहा है और उसके साथ–साथ वहाँ नयी और लौकिक धर्मनिरपेक्ष संस्थाएँ विकसित हो रही हैं। अब गाँव में सत्ता धार्मिक व्यक्तियों के पास न रह कर धनवान और सम्पत्तिवान सम्पन्न वर्गों के हाथ में है।

नगरी धर्म से तुलना– जैसा कि हम कह चुके हैं, ग्रामीण धर्म मूलतः कठोर और भोंडा है। उसमें भूत–प्रेत, जादू–टोना प्रौर देवी–देवताओं की भरमार हैं। उसके पीछे सूक्ष्म चिन्तन का अभाव है। भय और प्रलोभन ही उसका मूलाधार है। इसके विपरीत, नगरी धर्म परिष्कृत है। उसमें उच्च चिन्तन, प्रादर्शवाद और दार्शनिक उड़ान देखने को मिलती है। वह अधिक अमूर्त्त है, अधिक आदर्शवादी और सार्वभौम है, उसमें निरर्थक कर्मकाण्ड और अनुष्ठानों को अधिक स्थान नहीं है। उसमें गहन और गम्भीर चिन्तन के लक्षण होते हैं जबकि ग्रामीण धर्म में ऐसा कुछ नहीं है। वह तो सीधा सादा व्यक्ति की भौतिक आशाओं व आकांक्षाओं से परिसीमित है। पर हम इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते कि गाँव में रहने वाले सभी अन्धविश्वासी और नगर में रहने वाले बुद्धिवादी और दार्शनिक हैं। मूल अन्तर इसी बात का है कि नगरों उच्च शिक्षा के प्रसार के कारण बुद्धिवादियों और वैज्ञानिकों का बड़ा वर्ग बन जाता है, जो तटस्थता और सुविधा से जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार कर सकता है। इसीलिए नगरी जीवन में विज्ञान की प्रधानता है।

ग्रामीण धर्म के मुख्य पहलू– मानवशास्त्रियों ने ग्रामीण धर्म के तीन मुख्य पहलू बताये हैं– (१) ग्रामीण धर्म विश्व और ब्रह्मांड के प्रति एक निश्चित दृष्टि प्रदान करता है। इसमें जादू की कल्पनाएं, जीववाद, यह कल्पना कि संसार कई प्रेतात्माओं से परिपूर्ण रहता है, परलोक, पुराण आदि इस विश्व दृष्टि के अंग हैं। इसमें पितृलोक, देवलोक, बैकुण्ठ की कल्पनाएँ हैं। इसके अलावा इसके अन्तर्गत हर वस्तु, नदी–नालें, देवता, भूमि, पशु–पक्षी दैवी शक्तियों से विभूषित हैं। प्राकृतिक शक्तियों के विषय में ग्रामवासियों का ज्ञान बहुत सीमित है।

(२) आचार का विधान– ग्रामीण धर्म इस बात का भी निर्देश करता है कि व्यक्ति कौन–कौन से धार्मिक विधि–विधानों का पालन करे, घर और बाहर, कब और कैसे देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पूजा करे। वैसे तो हर जाति के अपने विशेष देवी देवता भी हैं, गाँव के कुछ सम्मिलित देवता भी हैं। इन सबकी समय–समय पर विधिपूर्वक पूजा करना भी प्रत्येक ग्रामवासी का कर्त्तव्य है। इसके अलावा ग्रामीण धर्म में बलि देने या त्याग करने का विधान है। कुछ देवताओं को तुष्ट करने

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

के लिए पशुओं की बलि देनी पड़ती है और मिष्ठान आदि चढ़ाना पड़ता है। विशेष विपदा पड़ने पर कुछ खास पूजा पाठ या अनुष्ठान का सहारा लेना पड़ता है, या मनौती मनानी पड़ती है।

धार्मिक व्यवहार में अनुष्ठानों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। हर काम को करने के लिए एक निश्चित स्वीकृत विधि है, जैसे कि आदमी कैसे हाथ धोये, कैसे बैठकर खाना खाये, खाने से पहले वह चुल्लू में जल लेकर थाली के चारों तरफ घुमाकर आचमन करे और कुछ खाना बाहर निकाल कर रख दे। केवल हिन्दुओं में ही ऐसा नहीं है। संसार के सभी धर्मों में कठोर अनुष्ठानों का विधान है। हर काम करने के लिए अलग–अलग अनुष्ठान हैं, जैसे फसल जब बोई जाय उसके लिए, जब काटी जाय, माड़ी जाय, उसके लिए इन अवसरों पर एक विशेष प्रकार की पूजा का आयोजन किया जाता है। इसी प्रकार गाँवों में हर एक धन्धा करने वाला विशिष्ट अवसरों पर अपने औजारों की पूजा करता हैं या कोई काम शुरू करने पर कोई विशिष्ट अनुष्ठान करता है।

एक संस्थागत संकुल के रूप में– भारतीय ग्रामों में हमें जो धर्म देखने को मिलता है वह अनेक आदिकालीन, कबायली, स्थानीय, क्षेत्रीय और सार्वदेशिक धर्मो, मतमतान्तरों का समुच्चय है। गाँव वाले धीरें–धीरें अपने जीवन में नये नये धर्मों के अंश जोड़ते गये। हमारे यहाँ आदि द्रविड़ धर्म, वैदिक और बौद्ध धर्म, इस्लाम, सभी ने ग्रामीण धर्म में अपना कुछ योगदान किया है। सारे देश में बड़ें–बड़ें तीर्थ स्थानों का जाल बिछा हुआ है और एक अच्छें हिन्दू का कर्तव्य है कि वह इनकी यात्रा करे। इस प्रकार समस्त भारत की जनता को एक सूत्र में पिरोने का भी धर्म एक महत्वपूर्ण साधन है। कुम्भ स्नान और बड़ें–बड़ें मेले गाँव वालों को दूर–दूर तक जाने का अवसर देते हैं और इस प्रकार वे उनके मानसिक क्षितिज का विस्तार करते हैं। हिन्दू धर्म ईसाइयत और इस्लाम की तरह राज्य का अंग बन कर नहीं रहा । इसीलिए यहाँ पर राज्य और धर्म के झगड़े भी नहीं हुए।

देश में अनेक सुधारवादी आन्दोलनों का सूत्रपात भी धर्म द्वारा ही हुआ। जाति प्रथा की कुरीतियों के विरुद्ध प्रचार करने वाले, ज्ञान मार्गी और भक्ति मार्गी सन्त और कवि थे। उन्होंने घूम–घूम कर अपना संदेश गाँव–गाँव में पहुँचाया और वहाँ की जनता को प्रभावित किया।

हमारे देश में एक बहुत बड़ी संख्या, साधु, सन्यासियों, फकीरों की है जो अभी भी गाँवों में घूम–घूम कर जनता की धार्मिक भावना को जीवित रखती है।

मन्दिर और मस्जिद का महत्व– हर बड़ें गाँव में जहाँ हिन्दू पर्याप्त संख्या में हैं, वहाँ एक मन्दिर, जहाँ मुसलमान वहाँ एक मस्जिद और जहाँ ईसाई वहाँ गिरजा मिलेगा। ये धार्मिक स्थान गाँवों की धार्मिक भावना का सजीव प्रतीक हैं। उनके बनाने में सभी गाँव वाले यथासम्भव सहयोग देते हैं। सभी वहाँ पर इकट्ठा होते हैं। अनेक बार उनके साथ पाठशालायें और मदरसे भी लगे रहते हैं, जहाँ पर मुख्यतः बच्चों की धार्मिक शिक्षा का प्रबन्ध रहता है। समय–समय पर यहीं भजन कीर्तन और धार्मिक उपदेशों का भी प्रबन्ध किया जाता है। इस प्रकार यह पूजा स्थल सामाजिक कार्य–कलाप के केन्द्र स्थल बन जाते हैं।

भारतीय ग्रामीण धर्म– भारत एक विशाल महाद्वीप है। इसमें विभिन्न धर्मो और सम्प्रदायों का संगम है। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि विभिन्न क्षेत्रों में धार्मिक भिन्नताएँ मिलें। हर क्षेत्र में वहाँ की प्रादेशिक संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव धर्म पर देखा जा सकता है। पर यह भी सही है कि इन सब भिन्नताओं में भी एकता का सूत्र विद्यमान है।

प्रसिद्ध मानवशास्त्री रेडफील्ड और मैरियट ने भारत में दो प्रमुख परम्पराओं का जिक्र किया है, उनमें से एक है महान परम्परा या जिसे हम सर्वदेशीय, राष्ट्रीय या शास्त्रीय परम्परा कह सकते हैं। दूसरी है लघु परम्परा क्षेत्रीय या स्थानीय परम्पराएँ। इस तरह ग्रामीण धर्म में भी हमें दोनों ही परम्पराओं का दर्शन होता है। वहाँ एक ओर राम, कृष्ण जैसे महत् परम्परा के देवताओं की पूजा मिलती है, तो दूसरी ओर स्थानीय देवी देवतामों, पीरों और फकीरों की समाधि का पूजन भी।

धर्म की अवधारणा– यह आम धारणा है कि भारतीय प्रत्यन्त धर्मप्राण व्यक्ति हैं जबकि यूरोप के लोग मूलतः लौकिक हैं। भारत में ग्रामीण जनता के लिए धर्म ही सब कुछ है। इसके साथ यह भी मान लिया जाता है कि भारतीय लोगों को इस संसार की अधिक चिन्ता नहीं है और वह इसे माया समझते हैं। मानवशास्त्री मॉरिस ऑपलर ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक गाँव का विवरण देते हुए ऐसा ही मत प्रकट किया है। एक हिन्दू का उच्चतम लक्ष्य सांसारिक चिन्ताओं, इच्छाओं, यहाँ तक कि अपने अस्तित्व से मुक्ति है। तापसीवाद, बुद्धिवाद, वैराग्य, अलगाव, हिन्दू धर्म दर्शन का मुख्य आधार है। किसी भी अन्य देश में इतने अधिक आदमी नहीं मिलेंगे, जिन्होंने संसार छोड़ दिया हो और जहाँ इतने अधिक व्रत–उपवास किये जाते हों और शरीर को इतना कष्ट दिया जाता हो। यहाँ संसार को क्षणभंगुर और मिथ्या माना जाता है। सच्चाई संसार से छुटकारा पाने में है। वास्तव में, क्या भारतीय ग्रामवासियों का ऐसा ही दृष्टिकोण है, इसमें सन्देह होता है।[1] इसके विपरीत, दूसरे मानवशास्त्री श्यामाचरण दुबे का, जिन्होंने हैदराबाद के एक गाँव का अध्ययन किया, कहना है कि स्पष्ट ही जो हिन्दू धर्म गाँवों में प्रचलित है वह

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

शास्त्रीय और दार्शनिक हिन्दू धर्म नहीं है, क्योंकि न तो उसमें आध्यात्मिक ऊंची उड़ान ही है और न अमूर्तता ही। यह तो उपवासों, उत्सवों, त्यौहारों का धर्म है, जिसमें समस्त प्रमुख महत्वपूर्ण अवसरों के लिए बंधें अनुष्ठान हैं, आध्यात्मिकता का यहाँ सर्वथा अभाव है, यहाँ का धर्म व्यावहारिक है।

उपरोक्त दोनों ही मत गंभीर क्षेत्रीय अध्ययन का परिणाम नहीं हैं और बिना क्षेत्रीय सामग्री के उनकी सत्यता का निर्णय कठिन है। भारतीय धार्मिक भावना विषय में ये दो प्रतियों की ओर इंगित करते हैं।

एक गाँव का उदाहरण– एक साधारण ग्रामवासी का साधारण जीवन क्या है, इसका अनुमान हम उससे बात कर या उसके धार्मिक व्यवहार को देख कर ही कर सकते हैं। मानवशास्त्री ऑस्कर लेविस ने इस दिशा में पहला महत्वपूर्ण अध्ययन दिल्ली के पास एक गाँव में किया था। इसके निष्कर्ष ग्रामीण धर्म के प्रचलित स्वरूप को समझने के लिए बहुत उपयोगी हैं।

उक्त अध्ययन में यह जानने की कोशिश की गयी कि गांव वालों की कौन सी बुनियादी और आध्यात्मिक धारणाएँ हैं और उनका संस्कृत–प्रधान हिन्दू महत् परम्परा के पुराण और दर्शन से कितना मेल है। उसने इस तरह के प्रश्न पूछे कि हिन्दू देवावलि के कितने देवताओं से गाँव वाले परिचित हैं, कौन से उनमें उपेक्षित है, गाँव वाले कहाँ तक कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानते हैं और विभिन्न धार्मिक विश्वासों में क्या मुख्य अन्तर है।

सुचनादाताओं से निम्नलिखित देवी देवताओं को पहचानने और वे किस शक्ति का प्रतीक हैं, बताने के लिए कहा गया – जैसे इन्द्र, विष्णु, शिव, ब्रह्म, काली, अग्नि, यम, लक्ष्मी, सरस्वती इत्यादि। उनसे विष्णु के विभिन्न अवतारों के नाम पूछे गये। उनके सामने मुख्यतः रामायण और महाभारत के तैंतीस नामों की सूची रखी गयी, जिनमें थे– हरिशचन्द्र, प्रहलाद, द्रुम, दधीचि, कर्ण, भीम, मोरध्वज, लक्ष्मण, राम, भरत, युधिष्ठिर, जनक, नल, हिरणाकश्यप, रावण, शकुनि, कंस, दुर्योधन, जरासंघ, कुम्भकरण, शिशुपाल, सीता, अनुसुइया, कुन्ती, द्रोपदी, सावित्री, राधा, अहिल्या, केकई, सुपर्णखा, वशिष्ठ, बाल्मीकि और विश्वामित्र। उनसे यह भी पूछा गया कि उनकी स्वर्ग, नरक, पुनर्जन्म, मुक्ति, ईश्वर, आत्मा, माया, संसार और जीवन के बारे में क्या कल्पना है, और पाप और पुण्य क्या है?

जिन लोगों से साक्षात्कार किया गया उनमें लगभग आधें जाट इस गाँव की प्रबल जाति के और आधे निम्न जाति के सदस्य थे और उनमें भी आधें साक्षर, आधें निरक्षर और छोटी व बड़ी उम्र के लोग थे। उन्होंने जो उत्तर दिये और उससे जो निष्कर्ष निकलते हैं वे सामान्य ग्रामीण धर्म पर अच्छा प्रकाश डालते हैं।

आयु के अन्तर– उत्तरों के विश्लेषण से यह पता चला कि जैसे जैसे आयु कम होती जाती है, पुराणों के पात्रों का ज्ञान भी कम होता गया । १८ से ३५ के आयु वर्ग में औसतन लोग १७ नाम बता पाये जब कि इससे बड़े आयु वर्ग में २७ नाम द्य देवताओं की सही सही पहचान दस में से पाँच ही कर पाये । विष्णु और शिव के बारे में बहुत कम लोग बता पाये । इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि यहाँ इन्हें अन्य नामों से जाना जाता है।

जाति के अनतर– आचारशास्त्र, जन्म और मृत्यु के बारे में जाटों और गैरजाटों में पर्याप्त अन्तर पाया गया। जाटों का दृष्टिकोण अधिक वस्तुगत और संसारी था। पौराणिक पात्रों को पहचानने में अधिक भिन्नता नहीं मिलती। ब्राह्मणों और जाटों की जानकारी लगभग बराबर थी। बल्कि आश्चर्य की बात तो यह थी कि एक चमार की जानकारी सबसे अधिक थी, यहां तक कि वह विष्णु के पाँचों अवतारों का नाम बता सका। लोकवार्ताएँ और नौटंकी उसकी जानकारी के मुख्य स्रोत थे।

पुनर्जन्म– आधे सूचनादाताओं ने पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास प्रकट किया। इन चौदह में से कुल चार जाट थे, वह भी ६० साल से बड़े। ग्यारह अविश्वास करने वालों में सात १८ से ३५ वर्ष आयु वर्ग के जाट थे। इस प्रकार ब्राह्मणों और निम्न जातियों में जाटों की अपेक्षा पुनर्जन्म स्वीकार करने की अधिक प्रवृत्ति थी, अनेक जाटों ने वर्तमान जगत और जीवन पर अधिक जोर दिया और कहा कि स्वर्ग और नरक इसी संसार में है, कर्मों का फल इसी जीवन में मिल जाता है।

एक वृद्ध जाट स्त्री ने कहा, ''मरने के बाद स्वर्ग और नरक में जाने का प्रश्न नहीं उठता। इसी जीवन में मनुष्य स्वर्ग और नरक भोगता है। जिनके पास स्वास्थ्य और सम्पत्ति है वे स्वर्ग में हैं, जिनके पास नहीं वे नरक में है। एक बूढ़े को,' जिसे शांति नहीं, जिसे काम करना व दुःख उठाना पड़ता है वह नरक में है। हर चीज इसी जीवन में मिलती है। मृत्यु के बाद कोई दण्ड नहीं। अच्छे बुरे काम का पुरस्कार व दण्ड हमें इसी जीवन में मिलता है।''

एक ३२ साल के जाट नवयुवक का मत था, ''एक व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसके बारे में जो कुछ लोग कहते हैं वही स्वर्ग या नरक है। यह संसार ही असली कसौटी है। मृत्यु के बाद स्वर्ग नरक कुछ नहीं है। मैं पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करताय मैंने नरक यहीं पर देखा है। जब मनुष्य कष्ट में मरता है, उसके शरीर में कीड़े पड़ जाते हैं। जब वह सुख व सम्पदा में मरता है, वह स्वर्ग में है।''

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

केवल जाट ही नहीं, अन्य जाति के कई सदस्य ऐसे विचार रखते हैं। ४२ साल के एक चमार ने कहा, "स्वर्ग और नरक यहीं है। लोग तुम्हें तुम्हारे कर्मों से अच्छा या बुरा कहते हैं। यही स्वर्ग या नरक है। वे कहते हैं कि और झूले हैं, नरक में गड्ढें हैं और वहां कीड़ें शरीर को खाते हैं। पर किसी ने यह सब नहीं देखा है, सुना भर है। मैं तो समझता हूं जब एक आदमी बूढ़ा है, उसके लड़के पोते हैं, जो उसकी सेवा करते हैं और जब उसे सब सुख सुलभ है, वह स्वर्ग में है। पर जब लड़कें पोते सेवा नहीं करते, शरीर में घुन लग जाता है, वह अन्धा और बीमार हो कष्ट में मरता है, वही नरक है।"

उपरोक्त विचारों से पता चलता है कि इस विषय में ग्रामवासियों की कोई निश्चित विचारधारा नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि परम्परागत और नये विचार साथ साथ रह रहे हैं। ब्राह्मण और निम्न जाति के लोग स्वर्ग, नरक में अधिक विश्वास रखते हैं, उनके विचार अधिक परम्परागत हैं।

इसी तरह मुक्ति या मोक्ष के विषय में दो तरह के विचार प्रकट किये गये। ब्राह्मण का कहना था कि मुक्ति पाने पर मनुष्य भगवान में मिल जाता है। अनेक जाट बिना कष्ट की मृत्यु को ही मुक्ति मानते हैं। कुछ लोगों के विचार परम्परा विरोधी हैं और निम्न जाति के सूचनादाताओं के विचार दोनों और बंटे हुए थें।

जीवों के प्रति दया को जाट धर्मात्मा का गुण मानते हैं, जैसे चीटियों को आटा, गुड़ देना और चिड़ियों को दाने बिखेरना अच्छा काम है।

निम्न जाति के सूचनादाताओं ने उदारता पर सबसे अधिक बल दिया। वह व्यक्ति जो असहाय की सहायता करता है, भूखे को खाना देता है, वही धार्मिक है।

पापों के विवेचन में भी जाट और गैर–जाट के सूचनादाताओं में मतभेद प्रकट हुआ। अधिकांश ब्राह्मण ईश्वर में अविश्वास को पाप मानते थे। इसके अलावा उन्होंने दूसरे को कष्ट पहुँचाने, चोरी, व्यभिचार, झूठ बोलने आदि को भी पाप मानाय जाटों में कत्ल, दूसरों को कष्ट देना, चोरी करना, बड़े पाप माने गये। छोटी जातियों ने जो पाप गिनाये वे थे, भूखे को खाना न देना, असहाय की मदद न करना, कत्ल, चोरी, धोखा देना।

निम्नलिखित कुछ उद्धरण ग्रामवासियों के आचार सम्बन्धी विचारों का अच्छा खुलासा होगा– एक ४४ साल के ब्राह्मण के मत में, "एक भगत भी धर्मात्मा है, बिना भक्ति के कोई धर्मात्मा नहीं बन सकता, क्योंकि वह तभी जान पाता है कि सब उसी की सृष्टि है और सब बराबर हैं। धर्मात्मा वह है जो सब मनुष्यों से, गरीब और अमीर से बराबरी का व्यवहार करता है, भूखे को खाना देता है, झगड़ता नहीं है और अच्छा आदमी है। एक झूठा भक्त यहां तो पूजा करता है और वहां जाकर, चुगुलखोरी करता है। यह पूजा नहीं है।"

एक ३२ वर्षीय कुम्हार के मत में, "धर्मात्मा वह है जो बिना सूद के उधार देता है, बिना मांगे देता है और दूसरों के साथ हमदर्दी करता है ।"

एक ४० वर्षीय चमार के अनुसार, "धर्मात्मा वह है, जो अच्छें काम करता है, गरीबों की मदद करता है, दयावान है, और भूखे को खाना देता है।"

परम्परागत आशाओं की अभिव्यक्ति– धर्म और धर्मात्मा के विषय में गाँवों के चार ब्राह्मण और निम्न जाति के विचारों से यह बात प्रकट होती है कि वे अपने जाति–व्यवहार के अनुसार उन बातों पर जोर देते हैं जिनकी पूरा करने की आशा की जाती है। उदाहरण के लिए, ब्राह्मण से इस बात की आशा की जाती है, कि वह अन्य वर्गों की अपेक्षा धर्म में अधिक रमा रहे।

जाटों ने व्यावहारिक दान और सहायता पर सबसे अधिक जोर दिया। वही ऐसा वर्ग था जो कि सम्पत्तिशाली था और इस स्थिति में था कि दूसरों की सहायता कर सके। जाटों के प्रभुतासम्पन्न होने के कारण यह भी स्वाभाविक था कि उनके विचारों का निम्न जातियों पर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मोरीस ओपलर (1950) : विलेज लाइफ इन मॉडर्न इण्डिया, इन पैटर्नस ऑफ मॉडर्न लीविंग।
2. दूबे, एस०सी०, (1955) : इण्डियन विलेज, पृ०–93.
3. लेविस, ऑस्कर, (1958) : विलेज लाइफ इन नॉर्थ इण्डिया, पृ०– 249–260.
4. प्रिट्रिम सोरकीन : ए सिस्टेमेटिक सोर्स बुक ऑफ रूरल सोशियोलॉजी, पृ०– 445–458.

*****